बारह भावना

(दोहा)

निज स्वभाव की दृष्टि धर, बारह भावन भाय।
माता है वैराग्य की, चिन्तत सुख प्रकटाय॥

अनित्य भावना

मैं आत्मा नित्य स्वभावी हूँ, ना क्षणिक पदार्थों से नाता।
संयोग शरीर कर्म रागादिक, क्षणभंगुर जानो भ्राता॥
इनका विश्वास नहीं चेतन, अब तो निज की पहिचान करो।
निज ध्रुव स्वभाव के आश्रय से ही, जन्मजरामृत रोग हरो॥

अशरण भावना

जो पाप बन्ध के हैं निमित्त, वे लौकिक जन तो शरण नहीं।
पर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु भी, अवलम्बन हैं व्यवहार सही॥
निश्चय से वे भी भिन्न अहो ! उन सम निज लक्ष्य करो आत्मन्।
निज शाश्वत ज्ञायक ध्रुव स्वभाव ही, एक मात्र है अवलम्बन॥

संसार भावना

ये बाह्य लोक संसार नहीं, ये तो मुझ सम सत् द्रव्य अरे।
नहिं किसी ने मुझको दुःख दिया, नहिं कोई मुझको सुखी करे॥
निज मोह राग अरु द्वेष भाव से, दुख अनुभूति की अबतक।
अतएव भाव संसार तजूँ, अरु भोगूँ सच्चा सुख अविचल॥

एकत्व भावना

मैं एक शुद्ध निर्मल अखण्ड, पर से न हुआ एकत्व कभी।
जिनको निज मान लिया मैंने, वे भी तो पर प्रत्यक्ष सभी॥
नहीं स्व-स्वामी सम्बन्ध बने, माना वह भूल रही मेरी।
निज में एकत्व मान कर के, अब मेटूँगा भव-भव फेरी॥

अन्यत्व भावना

जो भिन्न चतुष्टय वाले हैं, अत्यन्ताभाव सदा उनमें।
गुण पर्यय में अन्यत्व अरे, प्रदेशभेद नहिं है जिनमें॥
इस सम्बन्धी विपरीत मान्यता से, संसार बढ़ाया है।
निज तत्त्व समझ में आने से, समरस निज में ही पाया है॥

अशुचि भावना

है ज्ञानदेह पावन मेरी, जड़देह राग के योग्य नहीं।
यह तो मलमय मल से उपजी, मल तो सुखदायी कभी नहीं॥
भो आत्मन् श्री गुरु ने, रागादिक को अशुचि अपवित्र कहा।
अब इनसे भिन्न परम पावन, निज ज्ञानस्वरूप निहार अहा॥

आस्रव भावना

मिथ्यात्व कषाय योग द्वारा, कर्मों को नित्य बुलाया है।
शुभ-अशुभभाव क्रिया द्वारा, नित दुख का जाल बिछाया है॥
पिछले कर्मोदय में जुड़कर, कर्मों को ही छोड़ा बाँधा।
ना ज्ञाता-दृष्टा मात्र रहा, अब तक शिवमार्ग नहीं साधा॥

संवर भावना

मिथ्यात्व अभी सत् श्रद्धा से, व्रत से अविरति का नाश करूँ।
मैं सावधान निज में रहकर, निःकषाय भाव उद्योत करूँ॥
शुभ-अशुभ योग से भिन्न, आत्म में निष्कम्पित हो जाऊँगा।
संवरमय ज्ञायक आश्रय कर, नव कर्म नहीं अपनाऊँगा॥

निर्जरा भावना

नव आस्रव पूर्वक कर्म तजे, इससे बन्धन न नष्ट हुआ।
अब कर्मोदय को ना देखूँ, ज्ञानी से यही विवेक मिला॥
इच्छा उत्पन्न नहीं होवें, बस कर्म स्वयं झड़ जावेंगे।
जब किंित् नहीं विभाव रहें, गुण स्वयं प्रगट हो जावेंगे॥

लोक भावना

परिवर्तन पंच अनेक किये, सम्पूर्ण लोक में भ्रमण किया।
ना कोई क्षेत्र रहा ऐसा, जिस पर ना हमने जन्म लिया॥
नरकों स्वर्गों में घूम चुका, अतएव आश सबकी छोड़ूँ।
लोकाग्र शिखर पर थिर होऊँ, बस निज में ही निज को जोड़ूँ॥

बोधिदुर्लभ भावना

सामग्री सभी सुलभ जग में, बहुबार मिली छूटी मुझसे।
कल्याणमूल रत्नत्रय परिणति, अब तक दूर रही मुझसे॥
इसलिए न सुख का लेश मिला, पर में चिरकाल गँवाया है।
सद्बोधिहेतु पुरुषार्थ करूँ, अब उत्तम अवसर पाया है॥

धर्म भावना

शुभ-अशुभ कषायों रहित होय, सम्यक्चारित्र प्रगटाऊँगा।
बस निज स्वभाव साधन द्वारा, निर्मल अनर्घ्यपद पाऊँगा॥
माला तो बहुत जपी अबतक, अब निज में निज का ध्यान धरूँ।
कारण परमात्मा अब भी हूँ, पर्यय में प्रभुता प्रकट करूँ॥

(दोहा)

ध्रुव स्वभाव सुखरूप है, उसको ध्याऊँ आज।
दुखमय राग विनष्ट हो, पाऊँ सिद्ध समाज॥